वीर सं.-२४८८, श्रावण वद-४, रविवार,
दि. १९-८-१९६२, सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. ११

कहाँ तक आया है? शेठी! '**तो क्या करें, सो कहते हैं।**' ऊपर क्या कहा? कि ये दोनों साथ में मोक्षमार्ग है और दोनों को उपादेय मानना सो तो मिथ्याबुद्धि है। दो सिद्धांत कहे। निश्चयमोक्षमार्ग--अपना स्वभाव में एकाग्र शुद्ध होकर श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र वीतरागी निर्विकल्प परिणति (हो), वह निश्चयमोक्षमार्ग। और रागादि या व्रतादि का परिणाम, उसको व्यवहारमोक्षमार्ग कहने में आता है। तो दोनों सच्चे मोक्षमार्ग हैं, ऐसा नहीं है। एक सच्चा और एक झूठा। असत्यार्थ कहो या झूठा कहो, अभूतार्थ कहो या झूठा कहो। समझ में आया? और दोनों को उपादेय मानना। निश्चयमोक्षमार्ग भी आदरणीय है और व्यवहार व्रत, नियम आदि विकल्प शुभ राग, उपाधि परिणति आस्रव की शुभ की परिणति, वह भी उपादेय है, यह मानना तो मिथ्यात्व है। ऐसा मानना मिथ्याबुद्धि है। दोनों सच्चा नहीं और दोनों उपादेय नहीं। एक सच्चा, एक असच्चा। एक उपादेय, एक हेय।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- चौथे गुणस्थान के स्थान में।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- व्रत लेने का कहाँ प्रश्न है। आता है उसको सच्चा मोक्षमार्ग न मानना। आते हैं। समझ में आया? आया है कि नहीं तुम्हारे? कौन जाने कहाँ से कहाँ हो जाता होगा।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- पुण्य काम करता है, बात सच्ची।

देखो, दो बात ली। एक भूतार्थ मोक्षमार्ग अर्थात् सच्चा। एक अभूतार्थ। वह निकाला व्यवहार अभूदत्थो उसमें से निकाला है। ११वीं गाथा, उसका दो पद। व्यवहार सो असत्य है और निश्चय सो सत्य है। उसमें से निकाला कि तुम तो कहते हो कि हमें निश्चयमोक्षमार्ग--स्वभाव की शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान भी हमें सच्चा है और बीच में व्रत, नियम, संयम का विकल्प उठते हैं, शुभराग वह भी सच्चा मोक्षमार्ग है, यह बात झूठ है। एक सच्चा है और एक झूठ है। समझ में आया? और दोनों उपादेय है ऐसा मानना भी मिथ्यादृष्टि है। निश्चय उपादेय और व्यवहार उपादेय ऐसे होता नहीं। वहाँ तक आया है।

'**वहाँ कहता है कि श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं...**' लो, श्रद्धा तो निश्चय की रखते हैं '**और प्रवृत्ति व्यवहाररूप रखते हैं।**' हमारी श्रद्धा में निश्चय है और प्रवृत्ति व्यवहार--व्रत, नियम, संयम, तप आदि शुभराग की प्रवृत्ति रखते हैं। वज़न रखना है न, प्रवृत्ति और व्यवहार अभिप्राय अनुसार है। प्रवृत्ति कोई व्यवहार-फ्यवहार नहीं है, ऐसा कहते हैं। प्रवृत्ति है वह व्यवहार-फ्यवहार नहीं। उसको व्यवहार मानना उसका नाम व्यवहार है। मोक्षमार्ग व्यवहार मानना वह व्यवहार है। प्रवृत्ति कोई व्यवहार (नहीं है)। प्रवृत्ति तो द्रव्य की परिणति है। समझ में आया? क्या कहा समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह व्यवहार है, परिणति तो अपनी है। अपनी पर्याय में राग, विकल्प, व्रत, नियम, शील, संयम का विकल्प वह पर्याय तो आत्मा की परिणति है। उस परिणति को व्यवहार मानना, मोक्षमार्ग मानना व्यवहार है। परिणति कोई व्यवहार है या निश्चय है ऐसा है नहीं। समझ में आया? हैं?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- बहुत चलता है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- लेकिन व्यवहार क्या? वह चलता है, देखो!

'**वहाँ कहता है कि श्रद्धान तो निश्चय का रखते हैं...**' वह तो उसमें भी अन्य में भी आता है। 'निश्चय दृष्टि हृदय धरे जी, साधे जे व्यवहार पुण्यवंत ते पामशे भवसागरनो पार।' ऐसा नहीं है। व्यवहार करना वह भी नहीं, मैं करुँ ऐसा नहीं और प्रवृत्ति स्वयं व्यवहार नहीं। समझ में आया? '**इस प्रकार हम दोनों को अंगीकार करते हैं।**' वह कहता है सामने का पक्षवाला, हम तो दोनों को इस अपेक्षा से अंगीकार करते हैं। एक निश्चय श्रद्धा में रखते हैं, व्यवहार प्रवृत्ति करते हैं। बस! इतना हमारी दो प्रकार से.. इस अपेक्षा से दोनों को अंगीकार करते हैं ऐसा हम मानते हैं। '**सो ऐसा भी नहीं बनता,...**' वह भी बनता नहीं, तू कहता है वह बात ही झूठी है।

'**क्योंकि...**' देखो, न्याय देते हैं। '**निश्चय का निश्चयरूप और व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान करना योग्य है।**' व्यवहार नहीं है और व्यवहार की व्यवहारश्रद्धा नहीं करना (ऐसा नहीं)। निश्चय को निश्चय-व्यवहार मोक्षमार्ग यथार्थ मानना और व्यवहार को व्यवहार है ऐसा मानना, व्यवहार है ऐसा मानना, ऐसी श्रद्धा करना कि व्यवहार है। एक निश्चय की श्रद्धा करना और व्यवहार की प्रवृत्ति करना और श्रद्धा नहीं करना,

वह तो निरपेक्ष निश्चय व्यवहार की अपेक्षा रही नहीं, मिथ्यादृष्टि हो गया। समझ में आया? धरमचंदजी! क्या आया?

मुमुक्षु :-- प्रवृत्ति जो है...

उत्तर :-- वह तो ठीक, प्रवृत्ति नहीं, हम प्रवृत्ति को व्यवहार कहते हैं। श्रद्धा नहीं रखना, व्यवहार की श्रद्धा नहीं, निश्चय की श्रद्धा रखना। दोनों की श्रद्धा रखना। निश्चयमोक्षमार्ग निश्चय से है, उपादेय है, सत्य है ऐसी श्रद्धा करना और व्यवहार व्रत, नियम का विकल्प शुभराग है वह मोक्षमार्ग है नहीं, व्यवहार से कहने में आता है। उपादेय नहीं, सच्चा नहीं, परन्तु है ऐसी श्रद्धा करना। एक नय की श्रद्धा करने से दूसरे नय की श्रद्धा न हो तो मिथ्यादृष्टि एकांत हो जाता है। समझ में आया? एक नय को आदरणीय मानना और दूसरी नय को नहीं मानना, नहीं मानना। आदरणीय नहीं मानना दूसरी बात (है), झूठा मानना दूसरी बात है, लेकिन है नहीं ऐसा मानना एकांत मिथ्यात्व है। समझ में आया?

'**क्योंकि निश्चय का निश्चयरूप...**' अपना चैतन्यप्रभु अपनी अंतर्मुख होकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र वीतरागी मोक्षमार्ग है उसको ऐसा मानना। '**व्यवहार का व्यवहाररूप...**' राग को, पुण्य को, शुभ भाव की प्रवृत्ति है उसको व्यवहार है ऐसी श्रद्धान करना, व्यवहार की श्रद्धान करना। हेयपने जानकर श्रद्धा उसकी करना।

मुमुक्षु :-- श्रद्धान में दोनों बात आयी?

उत्तर :-- दोनों बात आयी श्रद्धान में। आदरने में एक आया, श्रद्धान में दो आया। व्यवहार है ही नहीं तो निश्चय कहाँ-से आया? व्यवहार, निश्चय दो है नहीं ऐसा नहीं। निश्चयमोक्षमार्ग है वह उपादेय और सत्य है। व्यवहारमोक्षमार्ग है, (वह) है सही, श्रद्धा में लेना की है, आदरणीय नहीं, सत्य नहीं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, वह बात है। व्यवहार ही नहीं है, बस! हमें तो एक निश्चय है। व्यवहार-फ्यवहार है नहीं। केवली हो गया? अथवा मिथ्यादृष्टि हो गया। शेठी! ऐसा है नहीं।

कहते हैं, '**क्योंकि निश्चय का निश्चयरूप और व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान करना योग्य है। एक ही नय का श्रद्धान से एकान्त मिथ्यात्व होता है।**' देखो! जैसे व्यवहार को अकेला मानना और निश्चय न हो तो भी एकान्त मिथ्यात्व है। क्या कहा? हम तो व्रत, नियम, व्यवहार श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र सब व्यवहार करते हैं वह हमारा व्यवहार है। लेकिन निश्चय के बिना व्यवहार तो एकान्त (मिथ्यात्व है)। एक नय दूसरी नय की अपेक्षा न रखे तो तो मिथ्यादृष्टि हो गया। समझ में आया?

कुछ लोग कहते हैं न? यहाँ दूसरी बात है, पहले दूसरा कहते हैं उसको कि हमारे व्यवहार है, व्यवहार है। लेकिन निश्चय बिना व्यवहार कहाँ-से आया? अकेला व्यवहार निश्चय बिना, जैसा एकांत मिथ्यात्व है, वैसा अकेला व्यवहार निश्चय बिना एकान्त मिथ्यात्व है। समझ में आया? कहाँ गये अपने? राजमलजी! समझ में आया? दो है मानना, नहीं है ऐसा नहीं। व्यवहार है, वह परिणति है उसको व्यवहार तरीके व्यवहार मोक्षमार्ग तरीके (मानना)। व्यवहार माने है नहीं, लेकिन है वस्तु ऐसा मानना। व्यवहार की श्रद्धा ही न करना (ऐसा नहीं)। आदरणीय नहीं, सत्य नहीं परन्तु श्रद्धा ही नहीं करना (वह तो) एकान्त मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- एक उपादेय, एक हेय, एक सत्य, एक असत्य। दोनों की श्रद्धा करना। यह श्रद्धा छोड़ने लायक है, वह हेय है ऐसी श्रद्धा करना। लेकिन व्यवहार को मानना ही नहीं, व्यवहार है ही नहीं, (वह तो) मिथ्यादृष्टि है, एकान्त मिथ्यात्व है। उसमें से निकाले, देखो! यहाँ व्यवहार की श्रद्धा न करे तो मिथ्यात्व है। लेकिन वह तो व्यवहार की श्रद्धा करने का अर्थ, है, इतनी बात है। छोड़ने लायक है। वह श्रद्धा छोड़ने लायक है, व्यवहारश्रद्धा आदरने लायक है (ऐसा मानना) मिथ्यात्व है, एकान्त मिथ्यात्व है। समझ में आया? कितनी बात कही है! टोडरमल ने शास्त्रमें-से निकालकर। कली-कली का पांदडा खिल गया है, पांदडा को क्या कहते हैं? पत्ता हो न, कली उसका एक-एक पत्ता।

कहते हैं, भैया! तुम दोनों को उपादेय मानो तो झूठ, दोनों सत्य मानो तो झूठ और दोनों की श्रद्धा न करना वह भी झूठ। समझ में आया? बाबुभाई!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वस्तु की स्थिति ऐसी है। एक ओर कहना कि एक नय दूसरे नय की अपेक्षा न रखे तो निरपेक्षा नया मिथ्या। उसका अर्थ क्या? हम तो निश्चय को मानते हैं, व्यवहार को नहीं, मिथ्यादृष्टि है। व्यवहार व्यवहार है, लेकिन व्यवहार से निश्चय होता है (ऐसा) उसका अर्थ नहीं। व्यवहार से निश्चय होता है और व्यवहार से लाभ होता है, ऐसा उसका अर्थ नहीं है। है, उसको मानना उसका नाम व्यवहार की श्रद्धा (है), बस। समझ में आया?

यह अधिकार बहुत अच्छा है। मक्खन, मक्खन। '**ववहारोऽभूदत्थो**' ११वीं गाथा का यह खुलासा करते हैं। '**ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**'। भूतार्थ-भूतार्थ भगवान पूर्णानंद की प्रतीति, ज्ञान और रमणता वह शुद्धनय का विषय है। है तो विषय भूतार्थ त्रिकाल, परन्तु उसके आश्रय से जो परिणति उत्पन्न होती है उसको

निश्चयमोक्षमार्ग कहते हैं। निमित्त के अवलम्बन से पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा का भाव व्यवहार है ऐसा मानना। आदरणीय मानना नहीं और सत्य मानना नहीं। सत्य का अर्थ--वह सच्चा मार्ग है ऐसा मानना नहीं। परन्तु व्यवहार तरीके है ऐसा मानना।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- हाँ, आदरणीय एक ही है, सत्य एक ही है, दूसरा सत्य नहीं और दूसरा आदरणीय नहीं। मानने में ख्याल में दोनों रखना। समझ में आया?

तो कहते हैं, '**एक ही नय का श्रद्धान होने से एकान्त मिथ्यात्व होता है।**' जैसे निश्चयनय की दृष्टि की अपेक्षा बिना अकेला व्यवहार एकान्त मिथ्यात्व है, वैसे निश्चयदृष्टि में व्यवहार है ऐसी अपेक्षा रखे बिना (माने तो) वह भी एकान्त मिथ्यात्व है। लोगों को पकड़ना कठिन पड़े। व्यवहार न माने तो मिथ्यात्व है कि नहीं? देखो! तो व्यवहार मानना कि व्यवहार से धर्म होता है। ऐसा कहाँ आया? वह कौन कहता है? व्यवहार से धर्म होता है, व्यवहार सहायक है, व्यवहार मददगार है तो निश्चय है, वह बात तो है नहीं। व्यवहार से पुण्यधर्म होता है। व्यवहारधर्म का अर्थ बन्धधर्म होता है। परन्तु है ऐसा मानना चाहिये। नहीं है तो एकान्त मिथ्यात्व नय एक रहती है। दूसरी नय का ज्ञान श्रद्धा में न आवे तो मिथ्यानय हो जाती है।

मुमुक्षु :-- व्यवहारबन्ध न हो तो आस्रव, बन्ध नहीं माना।

उत्तर :-- आस्रव, बन्ध तो परिणाम है न। और उसकी परिणति में है न इतना। है तो इतना नहीं मानना? मिथ्यात्व है। समझ में आया?

'**तथा प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन ही नहीं है।**' देखो! उसने कहा था न? हम प्रवृत्ति व्यवहार की रखते हैं, प्रवृत्ति व्यवहार की रखते हैं, श्रद्धा निश्चय की रखते हैं, इसप्रकार दोनों श्रद्धा रखते हैं। तेरी दोनों श्रद्धा झूठी है। प्रवृत्ति व्यवहार की रखें हमारी श्रद्धा, प्रवृत्ति व्यवहार की रखना, ऐसा किसने कहा तुझे? सुन। '**प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन ही नहीं है।**' परिणति जो आत्मा की है.. क्या? व्यवहार की। व्रत, तप, भक्ति, पूजा का शुभराग। '**प्रवृत्ति में नय का प्रयोजन ही नहीं है।**' प्रवृत्ति तो द्रव्य की परिणति है, वह तो शुभराग संयम, ये व्यवहारसंयम हाँ! दया, दान, भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत का परिणाम, अट्ठाईस मूलगुण, बारह व्रत का विकल्प श्रावक की भूमिका में, वह द्रव्य की परिणति है। वह तो आत्मा की परिणति पर्याय है, नहीं कि जड़ की है। समझ में आया?

'**वहाँ जिस द्रव्य की परिणति हो उसको उसीकी प्ररूपित करे...**' प्ररूपित यानी जानिये, कहिये और जानिये '**सो निश्चयनय,...**' वह परिणति जीव की है, जीव

में है ऐसा जानना निश्चय सत्यार्थ है। '**और उसही को अन्य द्रव्य की प्ररूपित करे...**' लेकिन वह व्यवहार कर्मजन्य उपाधि है, कर्म का कार्य है, कर्म है तो हुआ है ऐसा व्यवहार से कहना, जानना सो व्यवहार है। समझ में आया? कर्मजन्य उपाधि (ऐसा कहने में आता है)। है तो जन्य जीव की पर्याय। व्यवहार रत्नत्रय का राग, पूजा, भक्ति है तो जीव की परिणति, उसकी कहना निश्चय। कर्मजन्य है और कर्म की है ऐसा जानना व्यवहार है। समझ में आया? समझ में आता है कि नहीं? ईश्वरचंदजी! देखो! ये व्यवहार-निश्चय का झघड़ा निकाल देते हैं। आहाहा..!

दोनों नय में जगत भरमायो है। बनारसीदास कहते हैं। निश्चय और व्यवहार उसका क्या मिलान है और क्या विरोध है, खबर नहीं। बस! हम निश्चय-व्यवहार दोनों को मानते हैं। वहाँ तो अकेला निश्चय मानते हैं, निश्चय मानते हैं, निश्चय मानते हैं। बाबुभाई! सोनगढ़वाले अकेला निश्चय मानते हैं, व्यवहार करना और व्यवहार करना और व्यवहार से लाभ तो मानते ही नहीं। बात तो सच्ची है। व्यवहार से लाभ ही मानते नहीं। मानते हैं कि व्यवहार से बन्ध है। समझ में आया? व्यवहार करना वह कर्तृत्वबुद्धि है, मिथ्याबुद्धि है। परन्तु व्यवहार है नहीं ऐसी बात नहीं। कर्तृत्वबुद्धि न हो, आदरणीय बुद्धि न हो, सत्य मोक्षमार्ग न हो तो भी है। समझ में आया?

उस परिणति को अपनी जानना वह निश्चय। कर्म की परद्रव्य की... परिणति तो वही की वही, पर की जानना सो व्यवहार। समझ में आया? समझ में आता है? शेठी!

मुमुक्षु :-- जी हाँ, परिणति अपने में होती है, पर जानना चाहिये यह पर है।

उत्तर :-- व्यवहार की अपेक्षा से पर, निश्चय की अपेक्षा से तो स्व। निश्चय तो अपनी परिणति है। तो उसको तो निश्चय कहना। कर्मजन्य से हुयी ऐसा कहना वह व्यवहार है। ऐसा निमित्त अपेक्षावाली श्रद्धा रखना कि है इतना, बस। वस्तु पर से है ऐसा नहीं, परन्तु निमित्त की अपेक्षा से वहाँ कर्मजन्य कहा, उसका स्वामी कर्म है ऐसा निश्चय में आया न? तो वह व्यवहार से कहने में आया। परमार्थ तो अपनी परिणति (है)। यहाँ तो दो द्रव्य की भिन्नता की बात यहाँ तो करते हैं। स्वभाव और विभाव, परभाव की बात अभी नहीं। समझे? विभाव को परभाव कहा न? पर का भाव इस अपेक्षा से। अपनी परिणति अपने में है, निमित्त से है ऐसा जानना व्यवहारनय का विषय है। हेय है, श्रद्धा में हेय है, आदरणीय नहीं। है इतना मानना। समझ में आया?

देखो! '**ऐसे अभिप्राय अनुसार प्ररूपण से उस प्रवृत्ति में दो नय बनते हैं;...**' प्रवृत्ति कहीं नय नहीं है। परन्तु प्रवृत्ति में अभिप्राय अनुसार कथन करने में

आता है अथवा जानने में आता है। '**उस प्रवृत्ति में दो नय बनते हैं;...**' अपनी जानना निश्चय, पर की जानना व्यवहार। ऐसे प्रवृत्ति में अभिप्राय अनुसार दो नय होता है। प्रवृत्ति कोई नय-बय है नहीं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- बस, बस, बस।

'**कुछ प्रवृत्ति ही तो नयरूप है नहीं।**' परिणति तो उसकी--जीव की पर्याय है, व्यवहार रत्नत्रय आदि। वह कहीं नयरूप है नहीं। '**इसलिये इस प्रकार भी दोनों नयों का ग्रहण मानना मिथ्या है।**' लो, तीसरा बोल कहा न। दो नय को उपादेय हम इस तरह मानते हैं। श्रद्धा निश्चय की रखते हैं और प्रवृत्ति व्यवहार की रखते हैं। ऐसा बनता नहीं। '**इस प्रकार भी दोनों नयों का ग्रहण मानना मिथ्या है। तो क्या करें?**' करना क्या? तुम तो... भाई! व्यवहार की श्रद्धा न रखे तो मिथ्यात्व, व्यवहार सच्चा माने तो मिथ्यात्व, व्यवहार आदरणीय माने तो मिथ्यात्व। समझ में आया? बड़ी गड़बड़ी आप की तो भाई! सुनो, सुनो, सुन तो सही। '**क्या करें? सो कहते हैं :--**'

'**निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना...**' निश्चयनय स्वद्रव्य आश्रय, स्वद्रव्य आश्रय, उसका जहाँ कथन किया हो उसको तो सच्चा मानना, उसका श्रद्धान अंगीाकार करना, वह श्रद्धा अंगीकार करना। '**व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो...**' व्यवहार निमित्त की अपेक्षा, पर की अपेक्षा से कथन किया हो '**उसे असत्यार्थ मानकर...**' उसका श्रद्धान तो किया था परन्तु '**उसका श्रद्धान छोड़ना।**' वह श्रद्धान आदरणीय नहीं। है इतना मानना, आदरणीय नहीं। समझ में आया? बड़ी गड़बड़।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- आदरणीय है ही नहीं, मोक्षमार्ग है ही नहीं, वह मोक्षमार्ग ही नहीं है। व्रत, नियम, तप, उपवास आदि मोक्षमार्ग है ही नहीं, धर्म ही नही नहीं। परन्तु व्रतादि परिणाम बीच में आये, निश्चय का अनुभव और दृष्टि होने के बाद आये उसकी व्यवहार है ऐसी श्रद्धा करनी। धर्म नहीं, मोक्ष नहीं उसके कारण, मार्ग नहीं। बड़ी कठिन बात। कहो।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- छोड़ दे, श्रद्धा में छोड़ दे, श्रद्धा में छोड़ दे। अस्थिरता में कहाँ-से छूटे? स्वरूप स्थिरता होगी तब छूटेगा। शुद्धोपयोग जब होगा तब छूटेगा। परन्तु श्रद्धा में वह, व्रत, नियम, उपवास, क्रियाकांड सब बन्धमार्ग है, वह धर्ममार्ग नहीं है ऐसा

श्रद्धा करके वह श्रद्धा छोड़ना। वह असत्यार्थ है, वह मार्ग सच्चा नहीं। ओहोहो..! '**श्रद्धान छोड़ना।**'

'**यही समयसार कलश में कहा है :--**' लो, बोलो।

सर्वत्राध्यवसानमेवमखिलं त्याज्यं यदुक्तं जिनै--
स्तन्मन्ये व्यवहार एव निखिलोप्यन्याश्रयस्त्याजितः।
सम्यङ्निश्चयमेकमेव परमं निष्कम्पमाक्रम्य किं
शुद्धज्ञानघने महिम्नि न निजे बध्नन्ति सन्तो घृतिम्।।१७३।।

'**अर्थ :-- क्योंकि सर्व ही हिंसादि...**' बन्ध अधिकार का श्लोक महाश्लोक है, हाँ! '**ववहारोऽभूदत्थो**' को इसके साथ मिलाया, इसके साथ मिलाया। सब बात एकदूसरे प्रकार से ११वीं गाथा में है उसही का सब में विस्तार है। '**अर्थ :-- क्योंकि सर्व ही हिंसादि...**' हिंसा के परिणाम, झूठ का, चोरी का, विषय का, परिग्रह ममता का और अहिंसा, पर की दया का, सत्य का, दत्त का, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का परिणाम '**अध्यवसाय है सो समस्त ही छोड़ना...**' उसमें एकत्वबुद्धि है उसको छोड़ना। सत्य पंच महाव्रत हो कि पाँच अव्रत हो, सब छोड़ने लायक है ऐसा मानना। समझ में आया? क्योंकि हिंसादि पाप परिणाम है, अहिंसा आदि पुण्य अध्यवसान '**समस्त ही छोड़ना...**' समस्त ही छोड़ना। पर की एकत्वबुद्धि--मैंने पर की दया पाली, पर का ऐसा किया और मैंने पर को ऐसा किया, अहिंसा का परिणाम मुझे ऐसा हुआ, यह सब अध्यवसाय छोड़ने लायक है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- प्रवृत्ति में एकत्वबुद्धि हुई न, मैंने उसका किया, मैंने उसकी दया पाली आदि एकत्वबुद्धि हुई न।

'**ऐसा जिनदेवों ने कहा है।**' ऐसा वीतराग देवों ने कहा है। '**इसलिये मैं ऐसा मानता हूँ...**' आचार्य महाराज अमृतचंद्राचार्य उसमें से ऐसा न्याय निकालते हैं कि भगवान परमात्मा सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ देवाधिदेव ऐसा फरमाते हैं कि पंच अव्रत और पाँच व्रत के विकल्प की एकत्वबुद्धि छोड़ दे। वह परद्रव्य आश्रय एकत्वबुद्धि है छोड़ दे। वह तुझे लाभदायक है नहीं। तो उसमें से तो हम ऐसा निकालते हैं, आचार्य कहते हैं... और बादवाली गाथा में २७२ में कुन्दकुन्दाचार्य वर्णन करते हैं, उसका अमृतचंद्राचार्यने निकाल किया।

'**जो पराश्रित व्यवहार है सो सर्व ही छुड़ाया है।**' यहाँ तो हम ऐसा निकालते हैं कि कोई भी निमित्ताश्रित विकल्पादि हो, भेद हो, सब भगवानने छुड़ाया है। एकत्वबुद्धि तो छुड़ायी है लिकन पराश्रित जितने भाव हैं सब छुड़ाये हैं।

मुमुक्षु :-- धर्मी का व्यवहार छुड़ाया है?

उत्तर :-- धर्मी का व्यवहार भी छुड़ाया है। व्यवहार ही उसे कहते हैं, अज्ञानी को व्यवहार कहाँ है? वह तो पहले कहा, एकान्त नय हो गयी। अज्ञानी को व्यवहार तो एकान्त नय है, मिथ्यात्व हुआ। और ज्ञानी को निश्चय है उसके साथ व्यवहार न माने तो भी एकान्त है। है सही, लेकिन आदरणीय नहीं है, जाननेलायक है। बस, बात यह है। व्यवहार जानने लायक है वह आया, १२वीं गाथा। ओहोहो..! संतों की वाणी पूर्वापर अविरोध (है)। जहाँ देखो वहाँ एक न्याय, न्याय, न्याय। समझ में आया?

तो कहते हैं, जिनदेव त्रिलोकनाथ वीतराग प्रभु (की) दिव्यध्वनि में ऐसा आया कि तेरी परद्रव्य के साथ एकत्वबुद्धि है वह छोड़ दे। ऐसा भगवान ने कहा तो हम ऐसा निकालते हैं कि परद्रव्य का आश्रय सब भगवान ने छुड़ाया है। परद्रव्य का आश्रय ही सब छुड़ाया है। '**सो सर्व ही छुड़ाया है। सन्त पुरुष एक परम निश्चय ही को भले प्रकार...**' देखो! उसका अर्थ जब भाई ने किया, बनारसीदास, जो असंख्य प्रकार केवली कहते हैं उतने मिथ्यात्वभाव उक्त है, जितना व्यवहारभाव उतना मिथ्यात्वभाव। अर्थात् जितने व्यवहार में लाभबुद्धि उतने मिथ्यात्वभाव। समझ में आया? व्यवहार भाव वह मिथ्यात्वभाव नहीं। परन्तु जितना व्यवहार विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, दान, ऐसा खाना, ऐसा पीना ऐसे सब विकल्प। समझ में आया? उसमें लाभ मानना उतना मिथ्यात्व का प्रकार। जितना व्यवहार का लाभ मानने का प्रकार, उतना मिथ्यात्व का प्रकार। समझ में आया? वह बनारसीदास ने कहा है, केवली उक्त है। केवली भगवान ऐसा कहते हैं, जितना व्यवहार उतना मिथ्यात्व। लाभ मानना, हाँ!

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- करे कौन? करता था कब? आता है, आता है उसको करना मानना वह मिथ्यात्व है। समझ में आया? बड़ा अटपटा। राग को करुँ वह तो पर्यायबुद्धि हो गयी, मिथ्याबुद्धि हो गयी, विकारबुद्धि हो गयी। विकारबुद्धि कहो, मिथ्याबुद्धि कहो, मिथ्यादृष्टि कहो। मैं करुँ। करने लायक नहीं, आता है। उसको जानना कि है, श्रद्धा में छोड़ देना।

मुमुक्षु :-- अपनेआप आ जाता है?

उत्तर :-- अपनेआप आ जाता है, ऐसी बात है। उसका क्रम में, चारित्रगुण है उसके क्रम में जो पर्याय आनेवाली है ऐसी आती है। आगे-पीछे करने की ताकात आत्मा में है नहीं। चारित्रगुण है, उसका जितना समय तीन काल का है, उतनी पर्याय है, चारित्रगुण की। तो उस समय में जो चारित्रगुण की पर्याय आनेवाली है वह आती है। मैं लाऊँ, वह पर्यायबुद्धि मिथ्यादृष्टि है। मैं करुँ, मैं रचुँ कर्ताबुद्धि है। लेकिन है,

श्रद्धा में छोड़ देना कि आदरणीय नहीं। है ऐसी श्रद्धा करना। लेकिन आदरणीय है ऐसी श्रद्धा छोड़ देना।

मुमुक्षु :-- कल्याण होगा ऐसा नहीं।

उत्तर :-- कल्याण नहीं, सत्य नहीं, धर्म नहीं, मोक्षमार्ग नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- मुनि को निश्चय आदरणीय। यहाँ तो सन्त कहा है। '**सन्तो घृतिम्**' हे सम्यग्दृष्टि! कलशकार ने तो सम्यग्दृष्टि लिया है। कलशकार है न? सन्त का अर्थ सम्यग्दृष्टि। हे सम्यग्दृष्टि! कलश है न कलश? राजमलजी की टीका। समझ में आया? हे सन्त! हे सम्यग्दृष्टि! व्यवहार की श्रद्धा छोड़ दे। निश्चय की श्रद्धा... वह कहते हैं न, देखो!

'**सन्तु पुरुष एक परम निश्चयही को...**' एक निश्चय को, शुद्ध चिदानंदमूर्ति वीतरागस्वभाव उस निश्चयही को '**भले प्रकार...**' भले प्रकार क्यों (कहा)? सिर्फ नाममात्र नहीं। निश्चय अखण्ड शुद्ध चैतन्य की अंतर दृष्टि एकाकार होकर '**निश्चयरूप से अंगीकार करके...**' निश्चय को भले प्रकार निश्चयरूप से अंगीकार करके '**शुद्धज्ञानघनरूप...**' अपना शुद्ध प्रकाशस्वरूप भगवान '**निजमहिमा में...**' देखो! व्यवहार की महिमा नहीं। देखो, व्यवहार की महिमा नहीं। हमें व्यवहार आयेगा न। वह महिमा हो गयी, उत्साह हुआ। कर्तृत्वबुद्धि है। समझ में आया? हमें व्यवहार तो आयेगा न, उस भूमिका अनुसार व्यवहार तो आयेगा। महाराज बारंबार कहते हैं, व्यवहार तो आयेगा। हाँ, आयेगा न। महिमा हुयी, व्यवहार की महिमा हुयी वह व्यवहार का आदरणीय भाव हुआ, मिथ्यात्व भाव है। समझ में आया?

'**निजमहिमा में...**' अपनी चैतन्यमूर्ति शुद्ध वीतरागविज्ञानघन उसमें एकाकार होकर '**स्थिति क्यों नहीं करते?**' स्थिति क्यों नहीं करते? भगवान अमृतचंद्राचार्य मुनि ९०० वर्ष पहले दिगंबर संत थे। छठवी-सातवीं भूमिका में परमेष्ठीपद में आचार्यपद में थे। वह फरमाते हैं, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, ऐसा अमृतचंद्राचार्य कहते हैं कि हम ऐसा कहते हैं। अरे.. जीवो! व्यवहार को व्यवहार पराश्रय की श्रद्धा छोड़ दे और अकेला निश्चय शुद्धज्ञानघन निजमहिमा में स्थिति क्यों नहीं करते? व्यवहार की महिमा तुझे क्यों आती है? एक निश्चयनय, देखो! एक निश्चयनय में स्थिति... एक कहा न? एक निश्चय को भले प्रकार। तो व्यवहार को ग्रहण न करे तो मिथ्यात्व होता है कि नहीं? ऐसा नहीं। व्यवहार है ऐसी मान्यता न करे तो मिथ्यात्व है। परन्तु महिमा व्यवहार की नहीं, उत्साह व्यवहार का नहीं, कर्तृत्वबुद्धि व्यवहार की नहीं। ओहोहो..! बहुत कठिन। साधारण पंडित, त्याग को कठिन पड़ जाये ऐसा है यह।

क्यों पंडितजी? ऐसा होता है कि नहीं? क्या कहते हैं? अरे.. प्रभु! शांति से सुन। उसका सब निकाल है। समझ में आया? कोई निकाल देने की बात है नहीं। सब स्पष्टीकरण, सब स्पष्ट है। थोड़ा ज्ञान में धीरा होकर निश्चय करे तो निश्चय हुए बिना रहता नहीं। कहते हैं, '**निजमहिमा में स्थिति क्यों नहीं करते?**'

'**भावार्थ :-- यहाँ व्यवहार का तो त्याग कराया है,...**' देखो! व्यवहार का त्याग कराया, श्रद्धा में त्याग कराया। स्थिरता में तो स्वरूप में उपयोग स्थिर होगा तब होगा। लेकिन श्रद्धा बिलकुल छोड़ दे (कि) व्यवहार से किंचित् लाभ है नहीं। इतना व्रत, इतना तप, इतना उपवास (किया), धूल में भी लाभ नहीं।

मुमुक्षु :-- पाप से बचने को..

उत्तर :-- पाप से बचे, पाप से बचे वह तो शुद्ध दृष्टि हो तो पाप से बचे ऐसा कहने में आया है। नहीं तो पाप से क्या मिथ्यात्व का पाप तो बड़ा है, उससे बचा? पाप में तो मिथ्यात्व पाप है। अशुभ में तो मिथ्यात्व अशुभ है, अशुभ से तो बचा नहीं। वह तो व्यवहार से कदाचित् कहने में आवे कि कषाय तीव्र नहीं है तो मंद है तो ठीक है, इतना। धर्म-बर्म के स्थान में ठीक है ऐसा है नहीं। समझ में आया?

'**निजमहिमा में स्थिति क्यों नहीं करते? भावार्थ :-- यहाँ व्यवहार का तो त्याग कराया है, इसलिये निश्चय को अंगीकार करके...**' निश्चय स्वभाव शुद्ध विज्ञानघन को अंगीकार करके '**निजमहिमारूप प्रवर्तना युक्त है।**' निजमहिमारूप प्रवर्तना युक्त है। पर में महिमा करके प्रवर्तना युक्त है नहीं। समझ में आया? कुछ लोग कहते हैं कि वहाँ अकेली निरपेक्ष बात चलती है, सापेक्ष तो लेते ही नहीं। यह कहा नहीं? वह कहते हैं कि सापेक्षा नाम व्यवहार से कुछ लाभ हो तो सापेक्षा है। ऐसा सापेक्ष है नहीं। परन्तु व्यवहार है इतनी सापेक्षता है, बस। समझ में आया?

जैसे उपादान में निमित्त की अपेक्षा बिना निश्चय से अपनी अपेक्षा से परिणति होती है वह निरपेक्ष है। और व्यवहार से निमित्त है ऐसा जानना, जानना वह ज्ञान है। निमित्त से हुआ है ऐसी बात है नहीं।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- नहीं है, निश्चय में सापेक्षता नहीं। व्यवहार से निमित्त की सापेक्षता का ज्ञान कराने को कहा, प्रमाणज्ञान कराने को। आदरणीय तो एक ही है, सापेक्ष में आदरणीय एक ही है। सापेक्ष वस्तु आदरणीय नहीं। परन्तु है इतना ज्ञान करवाया, ज्ञान करवाया, बस।

जैसे निमित्त से उपादान में कार्य नहीं होता, परन्तु उपादान में अपनी परिणति

से निश्चय से कार्य होता है। निरपेक्ष कार्य होता है। विकार या अविकार की परिणति निमित्त और पर की अपेक्षा बिना निश्चय से होता है। तब व्यवहार से कहने में आया वह निमित्त का ज्ञान कराने को कहा, लेकिन उससे निमित्त से कुछ हो गया है (ऐसा नहीं)।

ऐसे निश्चय-व्यवहार। निश्चय, निरपेक्ष व्यवहार की अपेक्षा बिना निश्चय ही अंगीकार करने लायक है। समझ में आया? परन्तु व्यवहार है ऐसी श्रद्धा निमित्त की करना। इतनी सापेक्ष श्रद्धा में आता है, परन्तु उससे लाभ होता है और उसमें निश्चय को मदद मिलती है, निश्चय धर्म प्रगट होता है, मिथ्यादृष्टि है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- स्वपरप्रकाशक ज्ञान का स्वभाव है कि नहीं? स्वपरप्रकाशक ज्ञान का स्वभाव है तो पर चीज क्या है वह सब ज्ञान स्वपरप्रकाश में आ जाता है। दूसरी चीज है कि नहीं?

मुमुक्षु :-- ज्ञान में आ जाता है।

उत्तर :-- ज्ञान में आ जाता है। स्वपरप्रकाशक है न ज्ञान? अकेला स्वप्रकाशक नहीं है। अपना भी प्रकाश करता है और पर का भी प्रकाश करता है। स्व का निश्चय में स्वपरप्रकाश का पर्याय ऐसा उत्पन्न हुआ कि यह एक चीज है। दूसरी चीज है कि नहीं?

मुमुक्षु :-- .. ज्ञान क्यों करवाया?

उत्तर :-- दूसरी चीज है। दूसरी चीज है और अपने ज्ञान में ताकात ऐसी है। स्वपर जानने की ताकात है और दूसरी चीज है, नहीं है ऐसा नहीं। समझ में आया? परन्तु निमित्त से कार्य होता नहीं, व्यवहार से निश्चय होता नहीं। लेकिन व्यवहार व्यवहार के स्थान में है, निमित्त निमित्त के स्थान में है। बस, इतनी बात है। समझ में आया?

'**तथा षट्पाहुड़ में कहा है :--**' टोडरमलजी ने कुन्दकुन्दाचार्य का समयसार का पहले व्यवहार का आधार लिया, बाद में अध्यवसाय का लिया, बाद में षट्पाहुड़ में कहा। मोक्षपाहुड़ है न? उसमें मैंने लिखा है, यह तो हिन्दी है। मोक्षपाहुड़ में है। बोलो।

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे।।३१।। (मोक्षपाहुड़)

दृष्टान्त भी कैसे दिये हैं, देखो न! कुन्दकुन्दाचार्य के लेकर, चयन करके। दूसरी जगह कहा वह नहीं लिया? सुन न, दूसरी जगह कहा है वह व्यवहार से कहा। परमार्थ यह है।

'**अर्थ :-- जो व्यवहार में सोता है...**' व्यवहार का विकल्पमें से छूट गया है '**वह योगी अपने कार्य में जागता है।**' व्यवहार नाम दया, दान, व्रत, भक्ति, तप का विकल्प है उससे सो गया है नाम उससे छूट गया है। '**वह योगी अपने कार्य में जागता है।**' अपना शुद्ध चैतन्यस्वभाव की दृष्टि, ज्ञान और रमणता में जागता है। व्यवहार सोया हो वह निश्चय में जागे।

'**तथा जो व्यवहार में जागता है वह अपने कार्य में सोता है।**' देखो! जो कोई व्यवहार क्रियाकांड के राग में जागृत है, उस पर लक्ष्य लगा दिया है और उसमें अपना उपयोग लगाकर, हम कुछ करते हैं, करते हैं, करते हैं, व्यवहार करते हैं वह व्यवहार में जागृत है, सो अपने निश्चयकार्य में सोता है। मूढ है। समझ में आया? यह सब गाथाएँ मक्खन है, मक्खन है। जैनशासन का नय का मक्खन। मक्खन कहते हैं न? मक्खन? मक्खन--नवनीत।

तो कहते हैं, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज महा धर्मधुरंधर आचार्य संत महंत ऐसा फरमाते हैं कि व्यवहार में सो गया, व्यवहार की जागृति नहीं और निश्चय में जागृत है वह यथार्थ है। और व्यवहार विषे जागृत है कि व्यवहार ऐसा करना, ऐसा करना, ऐसा करना, ऐसा विकल्प, ऐसा विकल्प, ऐसा बनाना, ऐसा खाना, ऐसा पीना, ऐसा लेना ऐसे व्यवहार विषे जागृत है वह अपने कार्य में सोता है। अपना निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान में सो गया है अथवा वह जागृत है नहीं। वह अज्ञानी नींद में पड़ा है। ऊँघ कहते हैं न? क्या कहते हैं? नींद, नींद। वह नींद में पड़ा है। व्यवहार में जागृत है वह निश्चय में नींद में पड़ा है और निश्चय में जागृत है उसने व्यवहार को नींद में डाल दिया है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- क्या कहते हैं?

मुमुक्षु :-- रेच तो भगवान का कहा हुआ है।

उत्तर :-- हाँ। वह आता है, कहा नाम आता है उसका ज्ञान कराया है, व्रत आते हैं उसका ज्ञान कराया है कि है, ऐसा ज्ञान करो, उसमें जागृत होकर रहो ऐसा कहा नहीं। आहाहा..! समझ में आया? आगम अनुसार चेष्टा करो, आहार-पानी, फलाना करो, शुभक्रिया विकल्प, कर्तृत्वबुद्धि। व्यवहार में जागृत--किसी में कोई कमी न आवे, समाज अपने को हिन न देखे। समाज हिन न देखे। समाज कहे, ओहो..! व्यवहारप्रवृत्ति बड़ी अच्छी रखते हैं, सुबह से शाम तक। ऐसी व्यवहार की प्रवृत्ति में जागृत रहते हैं, ज्ञानी ने वह छोड़ दिया है। वह सोता है, निश्चय में तो सोता है, नींद लेता है। आहा..! अंधा है, निश्चय में अंध है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- उसका उपयोग कहीं का कहीं लगा देते हैं। वह तो निश्चय की दृष्टि, अनुभव हो तो व्यवहार आता है उसका ख्याल करते हैं, ख्याल करते हैं, है इतना। लेकिन ये तो ऐसा बनाऊँ, ऐसा करुँ, ऐसा करुँ, उसको जोडुँ, वह करुँ.. जागे, जागे, जागे व्यवहार में वह निश्चय में अंध है। जेठमलजी! लेकिन बाहर में लोग.. आहाहा..! क्या उसकी व्यवहार प्रवृत्ति! बहुत ऊँची क्रिया! एक कवल में एक बाल जितनी पपड़ी निकली.. अंतराय.. अंतराय, आज आहार का अंतराय (हुआ)। क्या हुआ? वह तो राग है उस क्रिया तरफ का। मैं ऐसा बनाऊँ, ऐसा छोडुँ, ऐसा बनाऊँ अकेले व्यवहार में उपयोग जोड़ दिया। निश्चय का तो भान नहीं है कि मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ। ज्ञाता-दृष्टा में व्यवहार की कर्तृत्वबुद्धि हो सकती नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह आता है, दूसरी बात है। विकल्प ऐसा आता है निर्दोष लेने का, सदोष लेने का नहीं। आता है उसको जागृत होकर करुँ और वह बनाऊँ (ऐसा होता नहीं)। विकार है, कर्ताबुद्धि नहीं। ज्ञाताबुद्धि रखकर ऐसा विकल्प उस भूमिकायोग्य आये बिना रहता नहीं। लेकिन जागृत नहीं उसमें। वह तो जाननेवाला है कि है। जागृत चैतन्य में है। ओहोहो..! समझ में आया? निश्चय और व्यवहार का झघड़ा बड़ा डाले। एक बार टोडरमल का पढ़ तो सही। समझ में आया?

'**इसलिये व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर...**' देखो! इसलिये व्यवहारनय की श्रद्धा--कर्तृत्वबुद्धि--मैं ऐसा बनाऊँ, ऐसा रटुं छोड़कर... नवरंगभाई! ये पानी छानना कहाँ गया? आहा..! वह हो, भूमिका सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की हो, उस भूमिका में ऐसा विकल्प आओ, क्रिया को बननी हो तो बन जाओ, आत्मा उसका अधिकार नहीं, स्वामी नहीं। जो राग और निमित्त का स्वामी होता है, वह निश्चय में अंध है। जो निश्चय में जागृत है वह राग और निमित्त का स्वामी होता नहीं। स्वामी बनकर काम नहीं करता। समझ में आया? क्यों श्रीपालजी! बराबर है? सत्य है, त्रिकाल सत्य है। उसको अंतर में जचना चाहिये। देखो, अब कहते हैं, देखो!

'**व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।**' पहले कहा था कि व्यवहारनय का श्रद्धान करना। लेकिन करना, हेयबुद्धि से करना। समझ में आया? पहले कहा था कि नहीं? पहले कहा था, देखो! व्यवहारनय की श्रद्धा करना, नहीं तो एकान्त मिथ्यात्व हो जायेगा। व्यवहार का व्यवहाररूप श्रद्धान करना युक्त है, ऐसा। व्यवहार का व्यवहाररूप है, है, है इतना श्रद्धान करना युक्त है। लेकिन यहाँ कहते हैं कि, व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़ना। वह आदरणीय है और

लाभ है ऐसा श्रद्धा छोड़ देना। '**निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।**' बराबर है? सुनायी देता है?

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- विकल्प आये कि अशुद्धता न हो, लेकिन विकल्प में जागृत नहीं। ज्ञान में अंतर चैतन्य में जागृत है, ज्ञाता-दृष्टारूप से जागृत है। है सही, ऐसा मानना कि है। श्रद्धा छोड़ना कि उससे लाभ है। समझ में आया?

अब बड़ा सिद्धान्त कहते हैं। चार अनुयोग की कथनी में जहाँ-जहाँ कथनी चलती हो, द्रव्यानुयोग में, चरणानुयोग में, करणानुयोग में.. समझ में आया? धर्मकथा... '**व्यवहारनय...**' व्यवहारनय ऐसी चीज है कि '**स्वद्रव्य परद्रव्य को...**' मिलाकर निरूपण करता है। व्यवहारनय ऐसी है कि स्वद्रव्य को परद्रव्य में, आत्मा का कार्य जड़ में और जड़ का कार्य (आत्मा में), अथवा अपना द्रव्य पर में है और पर अपने में है, ऐसा व्यवहारनय स्वद्रव्य परद्रव्य को मिलाकर (कहती है)। ऐसा लेना। देखो, है न? '**मिलाकर निरूपण करता है,...**' अंतिम शब्द लेना। स्वद्रव्य और परद्रव्य को मिलाये। शरीर आत्मा का है, आत्मा का शरीर है, ऐसे एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में मिलाकर व्यवहारनय कथन करती है। ऐसी मान्यता करना मिथ्यात्व है। व्यवहारनय ऐसा कथन करती है वह श्रद्धा करना मिथ्यात्व है।

भोपालवाले ने पहले यह छपवाया था। नहीं, भैया? भोपालवाले ने छपवाया था। कहाँ गये डालचंदजी? पीछे बैठे हैं? अरे..! सेठ होकर पीछे क्यों बैठे हो? बाबुलालजी सेठ कहाँ गये? है कि नहीं? है? अच्छा। यह समझ में आया? आप की ओर से, भोपाल की ओर से पत्र छपवाया था न? शास्त्र का अर्थ करने की वह रीति है। उसमें से निकाला था। खलबली मच गयी। अरे.. भगवान! सुन तो सही।

कहते हैं, व्यवहारनय की ऐसी कथनपद्धति है कि अपना द्रव्य को पर कहे, परद्रव्य को अपना कहे। अपना द्रव्य को पर का कहे पर का द्रव्य को अपना कहे। एक बात, इसलिये वह श्रद्धा झूठ है। वह श्रद्धा छोड़नी। '**उनके भावों को...**' पुनः उनके भाव। आत्मा के भाव विकारी, समझ में आया? उन भावों को पर का कहे, व्यवहार। विकार अपना है तो पर का विकार करे, वह व्यवहारनय की कथनी है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- पुद्गल का बताया व्यवहार से है, परमार्थ से नहीं। अपनी पर्याय का कार्य है, क्या जड़ का कार्य है? चारित्रगुण की विपरीत पर्याय अपनी है। जिसमें चारित्र (गुण) है उसका विपरीत कार्य उसमें है। क्या विपरीत कर्म ने करवाया है? कर्म ने करवाया, ऐसा एक भाव दूसरे में लगा देती है। कर्म का उदय कर्म का भाव है

न? अनुभाग, कर्म का अनुभाग कर्म का भाव है। आत्मा में कर्म के अनुसार विकार होता है और कर्म है तो विकार है, ऐसा निमित्त कहता है। व्यवहारनय से कहता है। वह कहता है ऐसा तो नहीं है, हाँ! लेकिन कर्म है तो विकार है, ऐसा परद्रव्य के भाव को स्वद्रव्य में लगाता है और स्वद्रव्य के भाव को परद्रव्य में लगाता है। अपना आत्मा पर का बन्ध करता है, आत्मा कर्म की पर्याय का बन्ध करता है। तो अपना भाव से पर का भाव किया ऐसा व्यवहारनय कहती है। ऐसी मान्यता करना मिथ्यात्व है। समझ में आया?

'**उनके भावों को...**' उनके यानी? स्वद्रव्य के भाव को परद्रव्य का भाव, परद्रव्य का भाव को स्वद्रव्य का भाव, अपना विकारभाव को कर्म का भाव और कर्म का बन्धन भाव को आत्मा का भाव, ऐसा व्यवहारनय कहती है। ऐसी मान्यता करना वह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह तो निश्चय से, यथार्थ में, वह स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से। यहाँ दूसरी कथनशैली है।

अपना स्वभाव शुद्ध द्रव्य है ऐसी जहाँ दृष्टि हुई तो अपना स्वभाव का कार्य निर्मल ही है। विभावकार्य कर्म निमित्त है, तो निमित्त तरफ का झुकाव छोड़ना है सब तो कर्म का कार्य है ऐसा कहकर छुड़ाया है। समझ में आया? वह प्रश्न बराबर है। समयसार में ऐसा लिखा है कि, कर्म व्यापक और विकारी काम--कार्य कर्म का। ऐसा कर्ता-कर्म अधिकार की ७५ से ७९ (गाथा में कहा है)। समझ में आया? वहाँ तो कहा, व्यवहाररत्नत्रय जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा रागादि है उसकी आदि में आत्मा नहीं, मध्य में नहीं, अंत में नहीं। व्यवहार की आदि में, मध्य, अंत में कर्म ही है। वह दूसरी अपेक्षा ली। वह तो शुद्ध निश्चय उपादान अपनी दृष्टि हुई तो अपनी दृष्टि का द्रव्य का परिणमन शुद्ध ही होता है। अशुद्ध होना वह दृष्टि में, दृष्टि के विषय में और उसके कार्य में है नहीं। इतनी अशुद्धता हुई तो निमित्त तरफ का लक्ष्य से जो हुई तो निमित्त का वह कार्य है ऐसा कहकर छुड़ाया है। समझ में आया? बड़ी बात भाई! प्रश्न बराबर किया है यहाँ। वहाँ है वह दूसरी बात है। वहाँ दूसरी बात है। समझ में आया?

वहाँ तो ऐसा कहा कि, विकार का स्वामी कर्म है, आत्मा नहीं। वह तो सहजात्म चैतन्यस्वरूप स्वामी आत्मा हुआ। ज्ञानानंद चैतन्यमूर्ति प्रभु शुद्ध ज्ञानघन आत्मा है ऐसा स्वामी चैतन्य का हुआ वह राग का स्वामी होता नहीं। इसलिये उसका स्वामी नहीं तो कर्म स्वामी है ऐसा कहकर छुड़ाया है। समझ में आया? यहाँ तो पहली इस

श्रद्धा का ठिकाना नहीं है, उसको स्वभावदृष्टि का भान होगा नहीं। समझ में आया? ओहोहो..! कितनी बात संक्षेप में डाली है। पढ़ने की भी ना कहते हैं। अपनी बात बाहर आयी तो खलबली (हो गयी)। एक ब्रह्मचारी का कथन है कि, नहीं। पंडितजी का ऐसा आशय नहीं है। ऐसा आया था। पंडितजी का--टोडरमल का क्या आशय है, सब हम को खबर है। किसने कहा, सब मालूम है। नाम-ठाम ... बात करते नहीं। समझ में आया? भोपालवाले ने कहा, पंडितजी का ऐसा आशय नहीं है। यह किसका आशय है? यह (बात) किसकी चलती है? भोपाल की चिट्ठी आयी थी उसकी चलती है। भोपालवाले ने उसमें-से लिखा था, कहीं घर का नहीं लिखा था। पुस्तक है कि नहीं भैया? डालचंदजी! उसमें बड़ा अर्थ है, देखो! तुम्हारा लिखाया था बाहर में।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- वह आया है, सब में डाला है, सब पुस्तक में (डाला है)। शास्त्र का अर्थ करने की पद्धति। बहुत में आया है, समयसार के बाद दूसरे में आया, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय,...

व्यवहारनय ऐसी कोई कथन की पद्धति करती है कि स्वद्रव्य को परद्रव्य कहती है और परद्रव्य को स्वद्रव्य कहती है। और उनके भावों को--अपने भाव को पर का और पर के भाव को अपना (कहती है)। आत्मा है तो शरीर चलता है, व्यवहानय ऐसा कहती हैं। चलने का भाव जड़ का है, उसे आत्मा का कहना वह व्यवहारनय की कथनी है। ऐसा मानना मिथ्यात्व है। अब आया ये कारण-कार्य का झघड़ा। उपादान-निमित्त।

'**कारणकार्यादिक को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है,...**' निमित्त कारण है तो कार्य होता है, इस कार्य में निमित्त न होता तो नहीं होता, ऐसा एक कारण से दूसरे द्रव्य में कार्य होता है और वह न हो तो दूसरे में कार्य नहीं होता है, यह व्यवहारनय की कथनी है। ऐसा माने तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? ये कारण-कार्य। दो कारण मानो, दो कारण मानो। यहाँ तो कहते हैं, दूसरा कारण से दूसरे द्रव्य में कार्य हो, व्यवहारनय कहती है ऐसा मानना मिथ्यात्व है। अपने कारण से पर में कुछ हो, शरीर चले, वाणी बोले, कर्म बँधे, अपने कारण से, इस कारण से पर में कार्य हो ऐसा व्यवहारनय कहती है ऐसा माने तो मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु :-- ...

उत्तर :-- अनुभव में वही आता है कि घड़ा अपने से बनता है। आचार्य कहते हैं, हम तो देखते हैं कि मिट्टी से घड़ा बना प्रतिभासता है। कुम्हार ने बनाया ऐसा

हम को तो प्रतिभासता नहीं। तेरी दृष्टि में शल्य है तो भासता है। समझ में आया? रोटी बिना स्त्री बिना पकती नहीं, किसको भासता है? आचार्य कहते हैं, हमको तो ऐसा भासित नहीं होता। रोटी रोटी से पकती है ऐसा हमको भासता है। बड़ी बात भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु :-- कुम्हार घड़ा बनाता है ऐसा तो दुनिया कहती है।

उत्तर :-- वह तो लोगों की बात है। बराबर है। यह तो अलौकिक बात बतानी है। और कुम्हार घड़े का बनाता है वह नयाभास है, नय ही नहीं है। पंचाध्यायी कहता है कि वह नय नहीं है। व्यवहारनय भी नहीं, वह तो नयाभास है। वह समझाना है वीतराग को? त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमात्मा जिसने अपूर्व बात अपूर्व सर्वज्ञपद (प्रगट किया, उनको) ऐसी बात बतानी है कि कुम्हार घड़ा करता है, स्त्री रोटी बनाती है। ऐसा तो बालक से लेकर सब मानते हैं। कुम्हार जैसा मानते हैं। कुम्हार माने तो कुम्हार जैसा माने कि हमारे बिना पर में होता नहीं। ऐसा कारण-कार्य को लगाना (मिथ्यात्व है)। समझ में आया?

'**किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है..**' लो, सब में लेना। '**सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व है,...**' ऐसी श्रद्धान करने से मिथ्यात्व है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का, दूसरा द्रव्य इस द्रव्य का, एक भाव दूसरे में, वह भाव यहाँ, इस कारण से यहाँ कार्य (हुआ), यह कार्य इस कारण से (हुआ), कर्म का निमित्त से विकार हुआ और कर्म मार्ग दे तो क्षायिकभाव हो। आता है, पंचास्तिकाय में आता है। कर्मजन्य चार भाव है--उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, लो। कर्म बिना नहीं होता। वह तो व्यवहारनय का कथन है। अपनी पर्याय से होता है तब निमित्त कौन था उसका ज्ञान कराया है। ऐसे कर्म से मान ले तो मिथ्यात्व है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

सोमवार, दि. २०-८-१९५४,
सातवाँ अधिकार, प्रवचन नं. १२

यह मोक्षमार्गप्रकाशक, उसका सातवाँ अध्याय चलता है। उसमें यहाँ आया, देखो! व्यवहारनय और निश्चयनय को समझे बिना या तो एकान्त निश्चय का अवलम्बन करते